झील की तरह

हुश्र तवस्सुम निहाँ

झील की तरह

वह नदी के लगभग हर तट से परिचित था। यहाँ तक कि उसकी गहराई और लंबाई-चौड़ाई तक से भी। नाव खेने की परंपरा वह बचपन से ही ढोता आया था। पुरोहितों की विरासत की तरह, उसे दो चीजों से बड़ा मोह था। वो पावन नदी और उसके तट पर झूलते सुर्ख विमोहक गुलमोहर के तरुवर। नदी इसलिए कि उसमें से वह बचपन से ही जीवन उगाहता आया था। गुलमोहर इसलिए कि वे उसे रेतीली धूप में भी

लहलहाते रहने को उत्प्रेरित किया करते थे। प्रायः वह गुलमोहर की बाँहों में बाँहें डाल कर झूल जाता और यू ही हँस पड़ता। अकारण ही, और कभी-कभी नदी की विशालता और उसके विराट अस्तित्व को तलाशता रह जाता। मगर नदी की परिधि में उसे अपनी पथिकता कभी व्यर्थ नहीं लगी। ये और बात थी कि ना तो वह मंझधार में था, और न ही कभी किसी तट पर पहुँच पाया था।

कभी-कभी वह गुलमोहर के नीचे बैठ कर रोटी खाते हुए सोचने लगता क्या संबंध है अपना इस झील से शायद वही जो एक पौधे का अपनी भूमि से होता है। वह अपनी ही टोह लेने लगता 'कौन है उसकी माँ... उसकी जन्मदात्री या फिर जीवनदायिनी वो झील... ? वह भी तो कब का उगा है इस जल-भूमि पे। मानो इसी ने उसे जन्म दिया हो और नाव के रूप में उसके हाथ में एक आस थमा दी हो। प्रायः वह स्वयं को झील में हँसते कंवल जैसा परिभाषित कर डालता। मगर उसे अपनी तुलना झील से करते हुए अधिक उपयुक्त लगता। नदी भी इधर-उधर बहकर थपेड़ों से टकराती लौटती थी प्रतिक्षण, और वह भी इस तट से उस तट तक पतवार के सहारे तैरता हुए अधर-उधर होते हुए मस्त रहता न कभी उसे कोई पड़ाव मिल पाया न झील को ही होई स्थायित्व। कभी-कभी उसे शामली का ध्यान आता। महेश की विधवा का, जिस प्रकार नदी के प्रकोप ने उसके परिवार को बारी-बारी लील लिया था उसी तरह महेश को उसके भयंकर वेग ने समेट लिया था। इसके सिवा भी नदी के तूफान में प्रायः नावें फँस जाती और यात्री सहेट-समेट हो जाते। हालाँकि वो यात्री किसी आंध-भावना के तहत बीच नदी में पैसे के कुछ सिक्के छोड़ते जरूर थे। चाहे नदी के तूफान को रोकने की गरज से या फिर किसी आस्था के तहत। किंतु फिर भी वे नदी के उफनते प्लवन से कट नहीं पाते और कभी-कभार खप ही जाते।

किंतु तब ये प्रचलित हो जाता कि वे पापी थे। लेकिन हाँ, शामली की स्निग्ध छवि उसे जरूर उद्वेलित कर जाती। उसे कुलटा और निशाचिन कह कर प्रायः समाज ने प्रतिक्षिप्त कर दिया था। आम राय थी उसने महेश को खा लिया। ससुराल से तब से निष्कासित थी। पीहर में भी पापिन कह कर उससे निषेध कर लिया गया था। तब वह गहरी रात के सन्नाटे में उसके झोंपड़े तक आ पहुँची थी। वह चौंकते हुए उठ बैठा था ये कौन आधी रात को सुबकने बैठ गया। ढिबरी की लौ तेज करते ही वह सहम गया'

'... श्... शा... म... ली'

'शिवा... अब काली में कब उफान आएगा... ?'

एक कंपन लहराया था। उसकी कातरता महसूस कर वह विस्मित रह गया।

ये कैसा प्रश्न... बाकी तो सब झील के जल-प्लवन से घबराते हैं और उससे बचने

के लिए मनौतियाँ तक मानते हैं। वह सुबक ही रही थी, उसने पूछा -

'क्यूँ... क्या करोगी उफान का... ?'

वह पुनः सुबकने लगी

'इस बार उफान आए तो मुझे बहा ले जाए... मुक्ति मिल जाए इस निर्मम जीवन से।'

'शामली तुम तो वही करने बैठी हो, जैसे कोई व्यक्ति आत्महत्या के उद्देश्य से नदी तट पर खड़ा हो जाए और फिर प्रतीक्षा करता रहे कि कोई पीछे से आ कर धक्का दे जाए... मरना चाहती थीं, तो यहाँ क्यूँ चली आईं, नदी में जा कर छलाँग लगा देती। वैसे तुम ये मुझसे पूछने क्यूँ आई हो?गाँव में कई और केवट हैं। वो भी गई रात को... ' और वह दूने वेग से सुबकने लगी 'भाई शहर गया है, बहू ने घर से निकाल दिया। कहती है, ससुराल में नाश कर आई है, अब यहाँ भी... '

कहते... कहते उसके शब्द हिचकियों के मध्य विलुप्त हो गए। वह हिचकियाँ पर काबू पाते हुए बोली -

'सब कहते हैं, तुम बड़े दूरदर्शी हो, नदी का हर वेग तुमसे पूछ कर आगे बढ़ता है। जल-प्रलय का तुम्हें पूर्वाभास हो जाता है। तभी तो सब कहते हैं कि -

'तुम... ' कहते-कहते वह थम गई।

'तभी तो क्या... ?' कह कर शिवा दीप की पीली चाँदनी में उसका दूध जैसी सफेद धोती में लिपटा साँवला मुखड़ा निहारने लगा। वह सकपका गई जैसे 'त... तभी... तो... कु... कुछ नहीं... ' वह बेमन की हँसी हँसते हुए एक अँधेरे कोने को ताकने लगा।

'तभी तो जल-प्लवन मुझे ग्रस नहीं सका... है... ना... ?' क्षण भर की मौनता

के बाद वह कहीं विचरता सा बोला -

'शामली ! काली नदिया नहीं, मेरी माँ है। तुमने देखा नहीं बालपन से आज तक उसी की गोद में खेलता रहा हूँ, इसी के आँचल में दौड़-भागकर आज भी जीवन उगाहता हूँ। मैं तो उस नदिया पे उगा ही हूँ शामली। वह मुझे खाएगी नहीं। हाँ, जिस दिन जी चाहेगा मुझे अपने आँचल में सुला लेगी,सदा के लिए। खैर छोड़ो, यदि मैं तुम्हें बता दूँ

प्रलय आने की साइत तो क्या तुम उस समय तक प्रतीक्षा करोगी... ?' और यदि उफान में तुम न बहीं तो... ? तो वह बड़े ऊहापोह में बैठी रही और फिर उठ खड़ी हुई।

'कहाँ जाओगी?'

'तुमने ठीक कहा शिवा, मैं मूर्ख हूँ। आत्महत्या करने निकली हूँ और आई हूँ साइत पूछने कदाचित् मुझमें इतना साहस नहीं था।' कहते हुए वह आगे बढ़ी

किंतु ठिठक गई

'... ठहरो... साहस की आवश्यकता मृत्यु के लिए नहीं, जीवन के लिए होनी चाहिए। वैसे, उचित समझो तो भादों तक प्रतीक्षा कर लो, जल-प्लवन के पूरे आसार बन रहे हैं।' कहते-कहते वह धीमे से हँस दिया। मगर शामली पीछे मुड़ते-मुड़ते फिर उद्विग्न हो उठी

'... शिवा, तुम भी अपमानित कर डालो... तुम्हें मेरी दयनीयता पे मखौल सूझ रहा है। भादों तक रुकूँ... और तब तक... '

'तब तक यहीं ठहर जाओ, मेरे इस नीड़ को ही अपना निलय समझ लो... '

और उसे जैसे किसी विवशता से अकस्मात् ही मुक्ति मिल गई, वह बड़े आनत भाव से आँखें पोंछती हुई बैठ गई।

'शिवा, क्या यह उचित होगा?'

'शामली ! मन की पीड़ा और मन के सुख के सम्मुख कोई भी प्रश्न व्यर्थ है। तुम्हारा मन मृत्यु स्वीकारता नहीं, मगर मृत्यु की राह पर जाना चाहती हो। तुम्हें जीवन से प्रेम है, मगर जीवन से भयभीत हो... कौन सा शब्द शेष है जो तुम्हें कहा जा सकता है... समाज द्वारा निष्कासित इस निशाचिन, पापिन को अपने झोंपड़े में स्थान दे रहा हूँ... क्या होगा, ज्यादा से ज्यादा तुम्हारा और नदी का प्रकोप हमें खा जाएगा।... महेश की तरह... ' और वह जैसे चौंक ही पड़ी।

'... शिवा, सब कहते हैं, महेश को मैं खा गई... ' तो वह हठात् हँस पड़ा। वह आश्चर्य से उसे देखती रह गई।

'... काश... काश शामली तुममें इतनी शक्ति होती, मैं तुमसे कहता, पूरा संसार खा जाओ... यहाँ चप्पे-चप्पे पे पाप लिखा जा चुका है। एक-एक बच्चा पाप का पर्याय बन

चुका है। किंतु नहीं, इससे भी गहरी एक और बात है, संसार में पाप का कोई अस्तित्व नहीं है, और कोई भी व्यक्ति पापी नहीं। बिना ईश्वर के संकेत के कोई पाप नहीं होता। जिसकी मर्जी के बिना एक भी तिनका नहीं डोलता, उसकी इच्छा के बिला जंगल कैसे उखड़ सकते थे, पर्वत कैसे ढह सकते थे और कैसे भला प्रलय आ सकती थी। ईश्वर ने हमारे हाथों पाप होना लिखा ही क्यूँ? और जब लिखा, तो ये पाप उसी की मर्जी थी,हमारी नहीं। हमने तो वही किया जो ईश्वर ने चाहा, फिर पापी मनुष्य कैसे हो गया? खैर चलो... हमारी व्यथाएँ एक जैसी हैं, तुम महेश को खा गईं, मैं अपने परिवार को... '

'... क्या कह रहे हो**... ?'** जैसे उसे पुनः चेतना आई।

'... अपने परिवार में मैं ही अकेला बचा हूँ शामली। बाकी सब नदी की भेंट चढ़ गए। क्या इसका अर्थ ये नहीं हो सकता कि मैंने उन्हें खा लिया। पर नहीं मुझ पर ये आरोप नहीं जाएगा, क्योंकि वे मेरे भाई, माँ, बाप, बहन थे, तुम पराये घर की बेटी हो, इससे गहरी त्रासदी ये कि तुम औरत हो। तुम पर कोई सहजता से आरोप धरना चाहेगा... '

... और फिर एक निःशब्दता घुलती रही थी वातावरण में। जैसे सारे शब्द ही चुक गए हों। फिर शिवा ने ही कोई सिरा टटोला।

'शामली, मुझे तुममें और इस बहती काली में कोई अंतर नहीं दिखता, उसके पानी की तरह तुम भी उतनी ही पवित्रा, स्वच्छ और पारदर्शी हो। ये बिडंबना ही है कि समय ने आज तुम दोनों को ही आरोपित कर एक अलग कटघरे में खड़ा कर दिया है, जब नदी में बह जानेवाले व्यक्ति को पापी मान लिया जाता है, तो महेश को पापी क्यूँ नहीं मान लिया जाता और यदि महेश को तुम खा गईं, तो उन जलमग्न लोगों को क्या उनके संबंधी नहीं खा गए... तुम इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार को कहाँ तक देखोगी... तुम ही क्या, तुम्हारा अस्तित्व मुझ पर भी प्रश्न बन कर हर क्षण खड़ा रहेगा। मगर मैं इस मूर्ख-दीर्घा से कटकर ही रहना चाहूँगा... '

शिवा बड़ा ही निर्भय, निष्कपट ओर उतना ही निष्कलुष अपने में ही मस्त रहनेवाला व्यक्ति था। थोड़ा उदासीन सा। अगले ही दिन कई कटुक्तियाँ सुनने को मिली थीं उसे। शामली जो उसकी झोपड़ी से झाँकते हुए भी घबराई थी। तब शिवा ने उसे जी भर कोसा था।

'... शामली, तू अब किस टुकड़े से अपना मुँह ढाँपना चाहती है? दो साल पहले से ही तिरस्कृत है, और रात घर से बाहर भी रही है तू। अब लज्जा, शर्म, लोक-लाज की कोई

भी ऐसी चादर नहीं जो तुझे ढाँप सके। तू बेधड़क बाहर निकला कर। संसार की चिंता करेगी, तो सुखी नही रहेगी। इस झोपड़ी तक ही तू अपना संसार समझ।' वह पीढ़े से उठा और उसके आँचल के छोर में हाथ पोंछते हुए झोपड़ी से बाहर निकल गया। तब वह उस आँचल को देर तक मुट्ठी में भींचती रह गई थी और फिर एक शांत लहर दौड़ गई थी चेहरे पर। प्रतीत हुआ, मानो उस आँचल का हर कलंक शिवा समेट ले गया। उसने कोने से झाड़ू उठाई और बाहर जा कर द्वार बुहारने लगी थी। खबर गाँव में आग की तरह फैली थी। सभी अनिष्ट की आशंका से सहमने लगे थे। कई तो शिवा की अनुपस्थिति में उसे जा कर धिक्कार भी आए थे और कई तो उसे गाँव में नग्न-परिक्रमा कराने का मन भी

रखते थे। किंतु शिवा से मोर्चा लेना भारी पड़ रहा था। वहीं कई बार इन्हीं उलाहनाओं से वह इतनी विचलित हो जाती कि तट तक पहुँच जाती और शिवा से रोने बैठ जाती।

'... शिवा, वो लोग मुझे दोहगा कहते हैं... '

'... तुम हो क्या?'

'ना... नहीं... तो'

'फिर क्यूँ दुखड़ा ले कर आई हो... '

'ये सब सुनने की ताब नहीं... '

'आत्मा हत्या करोगी... ?'

'न... नहीं ... तो ... '

'तो फिर घर जाओ, फिर से भूल कर मत आना, देखती नहीं, कितनी भीड़ रहती है यहाँ... ' अगर किसी और अर्थ में शिवा ने उसे वहाँ आने को मना किया होता तो शायद उसे अच्छा नहीं लगता। मगर अपना अर्थ उस भीड़ में समोहते हुए महसूस कर उसे अच्छा लगा था। वहीं, शिवा की इस मीठी चता ने उसे वर्तमान से टकराने की शक्ति भी दी थी। एक सपनीली इच्छा लिए वह वापस लौट आई थी। तब से वह तट तक गई ही नहीं।

शिवा बड़ा सतर्क किस्म का व्यक्ति था। झोपड़ी के इर्द-गिर्द किसी को फटकने तक नहीं देता था। यहाँ तक कि एक रोज वापस आने पर अपने द्वार पर सुलोचन ज्योतिष को देखते ही बिदक गया था। 'ऐ... ज्योतिष के बच्चे! तेरी ये मजाल... यहाँ भाग

बाँचने आया है... ' और उसकी कड़क सुनते ही सुलोचन ज्योतिष की ज्योतिष-विद्या हवा हो गई थी। वह उछल कर दो गज दूर जा कर बैठा, गला रुँध गया और शिवा ने लपक कर उसकी हथेली पकड़ कर तानी और कई घूँसे मारते हुए गरजा - 'ला... मैं तेरा भाग बाचूँगा... ' और उसका हाथ मोड़ते हुए बोला... 'तेरे भाग में लिखा है,अभी मेरी संटी से सोटियाया जाएगा' और लपक कर अंदर जाने लगा कि सुलोचन ज्योतिष ने उसका पाँव पकड़ लिया।

'... नहीं शिवा... पाँव पड़ता हूँ, अब इधर दिखा तो मुँह काला कर पूरे गाँव में चक्कर लगवाना... ' और तब कहीं जा कर उतरा था उसका क्रोध। ज्योतिष तो चला गया था, मगर भीतर कदम रखते ही वह शामली को ढूँढ़ने लगा। शामली एक कोने में सहमी खड़ी थी। उसे देखते ही वह बिफर उठा - 'तुमसे मना की थी, किसी को झोपड़े के निकट फटकने मत देना।'

'हाँ, मगर मैंने सोचा रेखाएँ बँचवा लूँ... क्या है भाग्य में' वह लगभग हकबकाई सी बोली और कहते-कहते सिर झुका लिया शिवा के तेवर चौगुना हो गए। वह दहकता-सा बोला 'इधर आओ... मेरे पास बैठो... ' वह सहमती सी उसके पास आ कर बैठ गई। शिवा उसकी हथेली निहारने लगा - 'शामली, ये रेखाएँ भविष्य की भाषा नहीं, ये हमारे जीवन की पगडंडियाँ हैं। ये हमारे पथरीले, अनसुलझे रास्ते हैं। ये आड़ी-तिरछी रेखाएँ, ये हमारे संघर्ष हैं। हमारी व्याधियाँ हैं। जितनी ये तुड़ी-मुड़ी हैं, उतने ही टेढ़े हमारे जीवन के पथ हैं। उतने ही उलझे संघर्षों से बिंधे हैं हम। ये... भाग रेखा... कर्म रेखा... जीवन रेखा... सब मिथक हैं।' और उसने झटके से उसकी हथेली झिटक दी। शामली उसे निर्मिमेष देखती भर रह गई थी। शिवा ने अपनी बात जारी रखते हुए सहजता से उसे समझाना चाहा था।

'शामली, तुम्हारा वर्तमान, भविष्य और अतीत बिल्कुल इस काली के समान है। अतीत से भविष्य तक कोई परिवर्तन इसे छू तक नहीं गया। ये भी तुम्हारी तरह आरोपित है और चौतरफा किनारों से बंधी हुई अपनी सीमा में ही उमड़-घुमड़ रहने को अभिशप्त है। या जब भी कभी उससे आगे बढ़ने की चेष्टा की है, उफान पर आई है तो एक-तिहाई गाँव उजड़ गया है। प्रचलित हो जाता है ' नदी उन्हें खा गई, खाने ही आई थी। यद्यपि ये जल-प्लवन नदी की प्रकृति होती है। फिर भी कहीं न कहीं वो भी आरोपित होती है। तुम भी कुछ वैसी ही हो अपनी सीमित दिशाओं में चक्कर काटती सी। एक परिधि में घुमड़ती सी और जब भी कहीं सीमा लाँघनी चाही है या अनायास ही कोई दुर्घटना घटती है तो आरोपित कर दी जाती हो। इस गाँव में दो ही नरभक्षी हैं, एक

तुम और... एक ये काली... और सारे गाँव का पाप तुम दोनों ही ढोती हो।' वह जैसे मन ही मन उसके तर्क को स्वीकारती हुई बात पलटने लगी।

'छोड़ो शिवा, मुझे भगवान की एक मूर्ति ला दो, पूजा-अर्चना से मन बंधा रहेगा तो सारी व्यर्थताएँ स्वतः मिट जाएँगी... ' मगर वह बरबस हँस पड़ा।

'शामली, कल राजनाथ मूर्तियाँ बेचने शहर ले जा रहा था। गणेश जी की पाँच की थी, श्रीकृष्ण, श्रीराम की दस-दस में और शिवा जी की बीस रुपए में। बताओ कौन सा भगवान लोगी... महंगावाला या सस्तावाला।' वह स्तब्ध सी सोचती रह गई वह संयत हो कर थोड़ा ठहर कर सीना तान कर बोला -

'... शामली... इस युग में भगवान् सस्ता है, मानव महंगा है। पूजना है तो मुझे पूजो, मैं भगवान हूँ। माटी के भगवान तुम हर मूल्य पर पा जाओगी, किंतु मुझ जैसा व्यक्ति लाखों रुपए दे कर भी नहीं खरीद पाओगी। बोलो पूजोगी मुझे। मैं हूँ न पूजने योग्य... शामली ? मनुष्य स्वयं अपना भगवान होता है, मैं तो कहूँ, तुम इस चक्कर में मत पड़ो इससे आस्थाएँ डगमगाएँगी, ईमान और दरकेगा... ' वह जैसे अपना आस-पास भूल ही गया और शामली अपने कहे पर ही पछता गई थी। वह झुँझलाती सी बोली थी

'शिवा, कृपा करके तुम जाओ, यात्री आने लगे होंगे... ' और वह तेजी से बाहर निकल गया। जैसे कुछ याद आया हो। शामली के अंतस में कुछ रेंग गया था। ये शिवा भी अजीब व्यक्ति है। अच्छी फलसुफाई करता है और मेरी सुरक्षा की भावना भी उसमें कैसे पैठ बैठ गई है। यद्‌यपि उससे मेरा कोई संबंध तक नहीं, एक पड़ोसी के सिवा, क्या है वह मेरा, न भाई... न पिता... न... प्रेमी... फिर... फिर... ? जितना सोचती-उलझती जाती। तन में काँटे उतरने लगते और फिर थक कर उसने इस संदर्भ को ही छोड़ दिया था। शायद वह उसे अपना अंत्याधार मानकर ही निश्चिंत हो लेना चाहती थी।

आषाढ़ लग गया। बादलों के सुरमई जाल अंशांशतः यहाँ... वहाँ छितरने लगे। हल्की-हल्की रेशमी फुहारों की स्पर्शिका मन के हर कोने में फूल उगाने लगी। खेतों की हरियाली, नेत्रों में एक अनछुआ सा बर्फीलापन उंड़ेल जाती थी। सावन आया, वृक्षों पर इधर-उधर झूलों की ऋतु खिल गई। वन तक महक गए। पूरा वातावरण एक अनोखे सौंदर्य से भर उठा। युवतियों के सावन गीत मन-मयूर में कोई बेचैनी उघाड़ डालते। मगर तब भी वह ठगी सी रह जाती है। कभी -कभी वह वल्ती से गिरती वर्षा की बूँदों को देर तक हथेली पर रोकती रहती। स्वयं नहीं भीग पाती। शिवा के भय से।

भादों तक सारा वातावरण शांत होने लगा। चहुँओर एक नीरसता घुलने लगी। एक ओर अगर मिट्टी की भींगी मन बाँध लेनेवाली सुगंध थी, वहीं दूसरी ओर आत्मा को भी आहत कर देनेवाली संभावनाओं की सहम। झोपड़ियों, छप्परों का प्रबंध करते, उन्हें सुधारने के प्रयत्न में सारा गाँव अचानक ही बड़ा व्यस्त होने लगा था। वहीं स्त्रियाँ घर में आरती-कीर्तन करतीं, प्रार्थनाएँ करतीं और मनौतियाँ मानने बैठ गई थीं। काली के संभावित प्रकोप से बचने के उपाय की तरह।

इस मदमाती ऋतु में लिलगुदवा प्रायः गाँव में स्वर भांजते दिखाई पड़ जाते हैं। मानो उन्हें ऋतु के मर्म का अच्छा ज्ञान हो। इस मयूर ऋतु में ही तो पूरी तरह सज लेने का मन करता है। नख, शिख तक। विवाहिताएँ अपने पतियों के नाम, नई-नई आकृतियाँ बाँहों पर गुदवाती हैं। युवतियाँ कहीं कलाई में छोटा सा फूल या बेल गुदवा लेती हैं। हालाँकि मन उनका भी होता किसी सुहाने स्पर्श का संकेत किसी नाम के रूप में अपनी बाँहों पर गुदवा लेने का। पर लोक-लाज के भय से वे बस सोचती सी रह जातीं। तब कई बार उसका भी मन हुआ था कुछ-कुछ ऐसा ही। मगर वो ज्योतिष प्रकरण याद पड़ते ही उसकी जान सूख जाती और किंवाड़े से टेक लगाए खड़ी वह इस विमोहक दृश्य को समोहती रहती। या कभी-कभी सूने नेत्रों से अपनी कलाई देखते-देखते उद्विग्न हो उठती। पर शिवा की याद पड़ते ही वह बुझ जाती। ज्योतिष तो गाँव के संबंध के कारण छूट भी गया था इसे तो शिवा मार ही डालेगा। तभी वह शिवा की आवाज पर चौंक गई।

'शामली... क्या बात है... ?' वह भयाक्रांत सी पीछे हट गई।

'कु... कुछ तो नहीं... ' मानो उसकी चोरी पकड़ी गई हो। शिवा ने यहाँ-वहाँ नजर दौड़ाई। स्त्रियों की भीड़। कुछ देर को वह शामली को देखता रहा अनिमेष। उसकी कलाई पकड़ी और लगभग खींचते हुए उधर ले गया। सभी स्त्रियाँ कुछ सहमी और हैरान सी पीछे हट गईं। गोदनेवाला अलग आशंकित होने लगा।

हालाँकि वह बड़ा तन्मय सा किसी स्त्री की कलाई में कुछ गढ़ रहा था। लेकिन जब वह स्त्री भी हाथ छुड़ाकर भाग गई तो उसके माथे पर भी शंका की कई तरंगें दौड़ गईं। तभी शिवा की कड़क उसे सुनाई दी।

'पहले इसकी कलाई गोदो... ' वह डर से थोड़ा सिकुड़ गया जैसे बोला -

'... हाँ... हाँ... क... क्यूँ नहीं, क्या गुदवाना है?'

'लिखो शिवा'। पास खड़ी स्त्रियों का मुँह खुला का खुला रह गया। उन्हें बरबस विश्वास नहीं हो रहा था। मगर जब विश्वास हुआ, वे अपने-अपने घर की तरफ भाग गईं। शायद यही खबर देने, कि तभी एक ओर से शोर उठा, 'नदिया का पानी चढ़ रहा है... ' घर-घर में प्रलाप का सा वातावरण हो गया। भागम-भाग मच गई। शिवा भी शामली का हाथ गोदवा कर झोंपड़ी में आ गया। पर तत्काल पुरोहित जी के आगमन से वे आशंकित हो गए। शिवा के भीतर जहाँ एक वितृष्णा सी मचाने लगी थी, वहीं शामली के अंतर में एक ठंडी सहम बिछती गई थी। छूटते ही पुरोहित जी ने शामली को कई गालियाँ दे डालीं। मगर शिवा के तेवर देखते ही नरम पड़ गए। थोड़ा समझाने की शैली में बोले 'शिवा, तेरे इसी निर्णय का ही परिणाम है नदी का चढ़ाव, पूरा सावन बीत गया। भादों भी चला ही गया था सही-सही। कि उतार पर ही काली उफान पर आ गई। मेघ घिरने लगे।' वह पुरोहित को शांत करते बोला 'पुरोहित जी! ये उतार-चढ़ाव और वर्षा, जल-प्लवन सब प्रकृति का नियम है। गाँव का कोई भी व्यक्ति इसका आरोपी नहीं।'

'सारे गाँव की नहीं, मैं शामली की कहता हूँ। जो लोक-लाज तज के यहाँ... तेरे साथ... '

'पुरोहित जी, खबरदार जो एक शब्द और आगे कहा। यह मेरा घर है चकला नहीं। हाँ, इसके अर्थ जरूर भिन्न हैं। मेरा ये निवास स्थल है, इसका ये शरण-स्थल है। तब तुम लोगों की लोक-लाज कहाँ गई थी, जब एक स्त्री को आधी रात के समय घर निकाला दे दिया गया था। एक स्त्री को चौराहे पर चीरहरण के लिए खड़ी कर देते हो, और अपनी मर्यादा, संस्कृति की गाथा गाते हो और जो उस चीर की रक्षा करना चाहे, उसे राक्षस कहना चाहते हो। पुरोहित जी, शामली आज भी उतनी ही पावन है, जितनी यहाँ आने से पूर्व थी। और ये भी सुन लो ये यहाँ से तिल भर भी न हिलेगी। काली चाहे सारा गाँव ही लील ले, और हाँ भोर होते ही मैं इससे विवाह करने जा रहा हूँ।'

पुरोहित जी, एक चुप, हजार चुप। अपनी स्पंदित काया लिए बाहर निकल गए। रात भर गाँव अजब-अजब शोर से भरा रहा। कहीं काली के चढ़ाव पर चिंताएं थीं कहीं शामली को ले कर तिरस्कृत भावनाएँ या कहीं शिवा की हठधर्मिता पर क्रोध। और वे देर रात तक मंत्रोच्चारण करते एक और प्रातः की धूमिल आस लिए सो गए।

प्रातः, जो भी उठा सोकर, उछल पड़ा। गाँव सूर्य की आभा से झिलमिलाने लगा था। पँछी भोर गीत गाने लगे थे। गाँव के मंदिर से घंटियों और मंत्रोच्चारण के स्वर किसी

आस्था से मन बाँधने लगे थे। पुरोहित जी कुछ लोगों के साथ एक श्रद्धेयता का भाव लिए उधर ही चल पड़े। पानी उतर चुका था।